मुनि वशिष्ठ का भरतजी को बुलाने के लिए दूत भेजना

चौपाई :

*** तेल नावँ भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा॥ धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥1॥

भावार्थ:

वशिष्ठजी ने नाव में तेल भरवाकर राजा के शरीर को उसमें रखवा दिया। फिर दूतों को बुलवाकर उनसे ऐसा कहा- तुम लोग जल्दी दौड़कर भरत के पास जाओ। राजा की मृत्यु का समाचार कहीं किसी से न कहना॥1॥

*** एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई॥ सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए॥2॥

भावार्थ:

जाकर भरत से इतना ही कहना कि दोनों भाइयों को गुरुजी ने बुलवा भेजा है। मुनि की आज्ञा सुनकर धावन (दूत) दौड़े। वे अपने वेग से उत्तम घोड़ों को भी लजाते हुए चले॥2॥

*** अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें॥ देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥3॥

भावार्थ:

जब से अयोध्या में अनर्थ प्रारंभ हुआ, तभी से भरतजी को अपशकुन होने लगे। वे रात को भयंकर स्वप्न देखते थे और जागने पर (उन स्वप्नों के कारण) करोड़ों (अनेकों) तरह की बुरी-बुरी कल्पनाएँ किया करते थे॥3॥

*** बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥ मागहिं हृदयँ महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥4॥

भावार्थ:

(अनिष्टशान्ति के लिए) वे प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन कराकर दान देते थे। अनेकों विधियों से रुद्राभिषेक करते थे। महादेवजी को हृदय में मनाकर उनसे माता-पिता, कुटुम्बी और भाइयों का कुशल-क्षेम माँगते थे॥4॥

दोहा :

*** एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ। गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाई॥157॥

भावार्थ:

भरतजी इस प्रकार मन में चिंता कर रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजी की आज्ञा कानों से सुनते

ही वे गणेशजी को मनाकर चल पड़े।157॥

चौपाई :

*** चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके॥ हृदयँ सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई॥1॥

भावार्थ:

हवा के समान वेग वाले घोड़ों को हाँकते हुए वे विकट नदी, पहाड़ तथा जंगलों को लाँघते हुए चले। उनके हृदय में बड़ा सोच था, कुछ सुहाता न था। मन में ऐसा सोचते थे कि उड़कर पहुँच जाऊँ॥1॥

*** एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निअराई॥ असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥2॥

भावार्थ:

एक-एक निमेष वर्ष के समान बीत रहा था। इस प्रकार भरतजी नगर के निकट पहुँचे। नगर में प्रवेश करते समय अपशकुन होने लगे। कौए बुरी जगह बैठकर बुरी तरह से काँव-काँव कर रहे हैं॥2॥

*** खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥ श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा॥3॥

भावार्थ:

गदहे और सियार विपरीत बोल रहे हैं। यह सुन-सुनकर भरत के मन में बड़ी पीड़ा हो रही है। तालाब, नदी, वन, बगीचे सब शोभाहीन हो रहे हैं। नगर बहुत ही भयानक लग रहा है॥3॥

*** खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए॥ नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी॥4॥

भावार्थ:

श्री रामजी के वियोग रूपी बुरे रोग से सताए हुए पक्षी-पशु, घोड़े-हाथी (ऐसे दुःखी हो रहे हैं कि) देखे नहीं जाते। नगर के स्त्री-पुरुष अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। मानो सब अपनी सारी सम्पत्ति हार बैठे हों॥4॥

*** पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहि जोहारहिं जाहिं। भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं॥158॥

भावार्थ:

नगर के लोग मिलते हैं, पर कुछ कहते नहीं, गौं से (चुपके से) जोहार (वंदना) करके चले जाते हैं। भरतजी भी किसी से कुशल नहीं पूछ सकते, क्योंकि उनके मन में भय और विषाद छा रहा है॥158॥

श्री भरत-शत्रुघ्न का आगमन और शोक

*** हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी॥ आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि॥1॥

भावार्थ:

बाजार और रास्ते देखे नहीं जाते। मानो नगर में दसों दिशाओं में दावाग्नि लगी है! पुत्र को आते सुनकर सूर्यकुल रूपी कमल के लिए चाँदनी रूपी कैकेयी (बड़ी) हर्षित हुई॥1॥

*** सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई॥ भरत दुखित परिवारु निहारा॥ मानहुँ तुहिन बनज बनु मारा॥2॥

भावार्थ:

वह आरती सजाकर आनंद में भरकर उठ दौड़ी और दरवाजे पर ही मिलकर भरत-शत्रुघ्न को महल में ले आई। भरत ने सारे परिवार को दुःखी देखा। मानो कमलों के वन को पाला मार गया हो॥2॥

*** कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥ सुतिह ससोच देखि मनु मारें। पूँछति नैहर कुसल हमारें॥3॥

भावार्थ:

एक कैकेयी ही इस तरह हर्षित दिखती है मानो भीलनी जंगल में आग लगाकर आनंद में भर रही हो। पुत्र को सोच वश और मन मारे (बहुत उदास) देखकर वह पूछने लगी- हमारे नैहर में कुशल तो है?॥3॥

*** सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई॥ कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता॥4॥

भावार्थ:

भरतजी ने सब कुशल कह सुनाई। फिर अपने कुल की कुशल-क्षेम पूछी। (भरतजी ने कहा-) कहो, पिताजी कहाँ हैं? मेरी सब माताएँ कहाँ हैं? सीताजी और मेरे प्यारे भाई राम-लक्ष्मण कहाँ हैं?॥4॥

दोहा :

*** सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैना। भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन॥159॥

भावार्थ:

पुत्र के स्नेहमय वचन सुनकर नेत्रों में कपट का जल भरकर पापिनी कैकेयी भरत के कानों में और मन में शूल के समान चुभने वाले वचन बोली-॥159॥

चौपाई :

*** तात बात मैं सकल सँवारी। भै मंथरा सहाय बिचारी॥ कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥1॥

भावार्थ:

हे तात! मैंने सारी बात बना ली थी। बेचारी मंथरा सहायक हुई। पर विधाता ने बीचमें जरा सा काम बिगाड़ दिया। वह यह कि राजा देवलोक को पधार गए॥1॥

*** सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा॥ तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥2॥

भावार्थ:

भरत यह सुनते ही विषाद के मारे विवश (बेहाल) हो गए। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हाथी सहम गया हो। वे 'तात! तात! हा तात!' पुकारते हुए अत्यन्त व्याकुलहोकर जमीन पर गिर पड़े॥2॥

*** चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौंपेहु मोही॥ बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी॥3॥

भावार्थ:

(और विलाप करने लगे कि) हे तात! मैं आपको (स्वर्ग के लिए) चलते समय देख भी न सका। (हाय!) आप मुझे श्री रामजी को सौंप भी नहीं गए! फिर धीरज धरकर वे सम्हलकर उठे और बोले- माता! पिता के मरने का कारण तो बताओ॥3॥

*** सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरमु पाँछि जनु माहुर देई॥ आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥4॥

भावार्थ:

पुत्र का वचन सुनकर कैकेयी कहने लगी। मानो मर्म स्थान को पाछकर (चाकू से चीरकर) उसमें जहर भर रही हो। कुटिल और कठोर कैकेयी ने अपनी सब करनी शुरू से (आखिर तक बड़े) प्रसन्न मन से सुना दी॥4॥

दोहा :

*** भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु। हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु॥160॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी का वन जाना सुनकर भरतजी को पिता का मरण भूल गया और हृदय मेंइस सारे अनर्थ का कारण अपने को ही जानकर वे मौन होकर स्तम्भित रह गए (अर्थात उनकी बोली बंद हो गई और वे सन्न रह गए)॥160॥

*** बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोनु लगावति॥ तात राउ नहिं सोचै जोगू। बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू॥1॥

भावार्थ:

पुत्र को व्याकुल देखकर कैकेयी समझाने लगी। मानो जले पर नमक लगा रही हो। (वह बोली-) हे तात! राजा सोच करने योग्य नहीं हैं। उन्होंने पुण्य और यश कमाकर उसका पर्याप्त भोग किया॥1॥

*** जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए॥ अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू॥2॥

भावार्थ:

जीवनकाल में ही उन्होंने जन्म लेने के सम्पूर्ण फल पा लिए और अंत में वे इन्द्रलोक को चले गए। ऐसा विचारकर सोच छोड़ दो और समाज सहित नगर का राज्य करो॥2॥

*** सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाकें छत जनु लाग अँगारू॥ धीरज धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहि भाँति कुल नासा॥3॥

भावार्थ:

राजकुमार भरतजी यह सुनकर बहुत ही सहम गए। मानो पके घाव पर अँगार छू गया हो।उन्होंने धीरज धरकर बड़ी लम्बी साँस लेते हुए कहा- पापिनी! तूने सभी तरह से कुल का नाश कर दिया॥3॥

*** जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही॥ पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा॥4॥

भावार्थ:

हाय! यदि तेरी ऐसी ही अत्यन्त बुरी रुचि (दुष्ट इच्छा) थी, तो तूने जन्मते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला? तूने पेड़ को काटकर पत्ते को सींचा है और मछली के जीने के लिए पानी को उलीच डाला! (अर्थात मेरा हित करने जाकर उलटा तूने मेरा अहित कर डाला)॥4॥

दोहा :

*** हंसबंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ। जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥161॥

भावार्थ:

मुझे सूर्यवंश (सा वंश), दशरथजी (सरीखे) पिता और राम-लक्ष्मण से भाई मिले। पर हे जननी! मुझे जन्म देने वाली माता तू हुई (क्या किया जाए!) विधाता से कुछ भी वश नहीं चलता॥161॥

चौपाई :

*** जब मैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ। खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ॥ बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥1॥

भावार्थ:

अरी कुमति! जब तूने हृदय में यह बुरा विचार (निश्चय) ठाना, उसी समय तेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े

(क्यों) न हो गए? वरदान माँगते समय तेरे मन में कुछ भी पीड़ा नहीं हुई? तेरी जीभ गल नहीं गई? तेरे मुँह में कीड़े नहीं पड़ गए?॥1॥

*** भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही॥ बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥2॥

भावार्थ:

राजा ने तेरा विश्वास कैसे कर लिया? (जान पड़ता है,) विधाता ने मरने के समय उनकी बुद्धि हर ली थी। स्त्रियों के हृदय की गति (चाल) विधाता भी नहीं जान सके। वह सम्पूर्ण कपट, पाप और अवगुणों की खान है॥2॥

*** सरल सुसील धरम रत राऊ। सो किमि जानै तीय सुभाऊ॥ अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं॥3॥

भावार्थ:

फिर राजा तो सीधे, सुशील और धर्मपरायण थे। वे भला, स्त्री स्वभाव को कैसे जानते? अरे, जगत के जीव-जन्तुओं में ऐसा कौन है, जिसे श्री रघुनाथजी प्राणों के समान प्यारे नहीं हैं॥3॥

*** भे अति अहित रामु तेउ तोहीं। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥ जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥4॥

भावार्थ:

वे श्री रामजी भी तुझे अहित हो गए (वैरी लगे)! तू कौन है? मुझे सच-सच कह! तू जो है, सो है, अब मुँह में स्याही पोतकर (मुँह काला करके) उठकर मेरी आँखों की ओट में जा बैठ॥4॥

दोहा :

*** राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि। मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि॥162॥

भावार्थ:

विधाता ने मुझे श्री रामजी से विरोध करने वाले (तेरे) हृदय से उत्पन्न किया (अथवा विधाता ने मुझे हृदय से राम का विरोधी जाहिर कर दिया।) मेरे बराबर पापी दूसरा कौन है? मैं व्यर्थ ही तुझे कुछ कहता हूँ॥162॥

चौपाई :

*** सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई॥ तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई॥1॥

भावार्थ:

माता की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्नजी के सब अंग क्रोध सेजल रहे हैं, पर कुछ वश नहीं चलता। उसी समय भाँति-भाँति के कपड़ों और गहनों से सजकर कुबरी (मंथरा) वहाँ आई॥1॥

*** लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥ हुमगि लात तकि कूबर

मारा। परि मुँह भर महि करत पुकारा॥2॥

भावार्थ:

उसे (सजी) देखकर लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्नजी क्रोध में भर गए। मानो जलती हुई आग को घी की आहुति मिल गई हो। उन्होंने जोर से तककर कूबड़ पर एक लात जमादी। वह चिल्लाती हुई मुँह के बल जमीन पर गिर पड़ी॥2॥

*** कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥ आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा॥3॥

भावार्थ:

उसका कूबड़ टूट गया, कपाल फूट गया, दाँत टूट गए और मुँह से खून बहने लगा। (वह कराहती हुई बोली-) हाय दैव! मैंने क्या बिगाड़ा? जो भला करते बुरा फल पाया॥3॥

*** सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥ भरत दयानिधि दीन्हि छुड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥4॥

भावार्थ:

उसकी यह बात सुनकर और उसे नख से शिखा तक दुष्ट जानकर शत्रुघ्नजी झोंटा पकड़-पकड़कर उसे घसीटने लगे। तब दयानिधि भरतजी ने उसको छुड़ा दिया और दोनों भाई (तुरंत) कौसल्याजी के पास गए॥4॥

दोहा :

*** मलिन बसन बिबरन बिकल कृस शरीर दुख भार। कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार॥163॥

भावार्थ:

कौसल्याजी मैले वस्त्र पहने हैं, चेहरे का रंग बदला हुआ है, व्याकुल हो रही हैं, दुःख के बोझ से शरीर सूख गया है। ऐसी दिख रही हैं मानो सोने की सुंदरकल्पलता को वन में पाला मार गया हो॥163॥